कबीर– कल, आज और कल

सारांश

वीरेन्द्र कुमार
प्राध्यापक हिन्दी
रा. आ. सं. व. मा. वि., सिसाय हिसार।

साहित्य और साहित्यकार की कसौटी है– युग–सापेक्षता और समाज–सापेक्षता। अज्ञेय ने अपने निबन्ध 'क्यों लिखता हूँ?' में कहा है कि सभी रचनाएँ सर्जन नहीं हुआ करती हैं। किसी भी रचना को सर्जन की श्रेणी में आने के लिए काल–सापेक्ष होना होता है। आज जो सामाजिक सन्दर्भ हैं; जो वैश्विक परिदृश्य हैं; उससे कटकर बन्द कमरे में लिखा, जो हो जाए, साहित्य तो हो ही नहीं सकता है। साहित्यकार का युग–बोध ही उसके साहित्य की प्रासंगिकता है। प्रासंगिकता एक निकष है जिस पर किसी रचना को जाँचा–परखा जाता है।

कबीर की प्रासंगिकता इस बात में है कि वे धर्म–निरपेक्ष, सम्प्रदाय–निरपेक्ष, जाति–निरपेक्ष और काल–निरपेक्ष हैं। जब कोई साहित्यकार धर्म, सम्प्रदाय और जाति से ऊपर उठ जाता है तो वह सर्वग्राह्य हो जाता है। कबीर ने अपने युग की समस्याओं को जितना आत्मसात किया, वह उनकी रचनाओं से परिलक्षित होता है और समस्याओं से वे कितने लड़े, यह उनके आधुनिक और प्रासंगिक होने का सबूत है। कबीर तब प्रासंगिक हो जाते हैं जब वे धर्म के नाम पर लड़ती मानवता को निर्गुण भक्ति का मार्ग दिखाते हैं। भोली और अज्ञानी जनता को मन्दिरों, मठों और मस्जिदों से निकाल कर परमात्मा को स्वयं में खोजने का सन्देश देते हैं। एक ईश्वर की परिकल्पना करता कबीर, वैश्विक मानवता को एक छत के नीचे खड़ा करने का साहस करता है। उसकी प्रासंगिकता है उसका कल्पनादर्श। वह एक ऐसा समाज चाहता है जो भाईचारे पर टिका है; जो सन्तोषी है; जिसमें धर्म, जाति और सम्प्रदाय नहीं है। कबीर के साहित्य से नारी–विषयक दृष्टिकोण और हठयोग को निकाल दें तो कबीर आज भी एक सच्चे समाज–सुधारक हैं; जिनकी वाणी में बाहरी कठोरता, तो आन्तरिक कोमलता है। कबीर का साहित्य दिशाहीन समाज को मार्ग दिखाने वाला एक प्रकाश स्तम्भ है।

मुख्य बिन्दु– कबीर, तात्कालीन, वर्तमान, भविष्य, प्रासंगिकता।

1.1 भूमिका

अनुभव की विशिष्ट अभिव्यक्ति मनुष्य को रचनाकार बनाती है। रचनाकार अपने अनुभव को विशिष्ट छन्द, लय, भाव, शैली में बाँधकर साहित्य रूप में लोक के समक्ष प्रस्तुत करता है। अनुभव तो सत्य ही होते हैं; लेकिन साहित्यकार इनमें अपने कौशल का प्रयोग कर मसाला डालता है। लेकिन साहित्यकार होने के नाते वह कल्पना की उड़ान उतनी ही भरता है जितनी अपेक्षित है। कविता या गद्य अपने समय के साथ जुड़ा रहे या समय और देशकाल साहित्य में प्रतिध्वनित हों, यह साहित्य की कसौटी है। रचनाकार के मन और मस्तिष्क पर उसके काल की परिस्थितियाँ प्रभाव डालती हैं या यूं कहें तात्कालिक परिस्थितियाँ ही रचनाकार की कलम से अभिव्यक्ति पाती हैं। साहित्य सदैव अपने काल का दर्पण रहा है। अपने देशकाल का अनुभव ही रचनाकार का युगबोध भी है। ''युगबोध की अवधारणा मूलतः आधुनिकता से ही सम्बद्ध है। आधुनिक और वर्तमान परस्पर समानार्थक सन्दर्भों में प्रेषित होते रहे हैं। अतीत भी कभी वर्तमान रहा होगा और प्रत्येक युग अपने आप में आधुनिक रहा है।''[1] ऐसे में हर रचनाकार भी आधुनिक रहा हो, जरूरी नहीं है। यहाँ आधुनिक होने का अर्थ प्रासंगिक लिया जाना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि अनुभव साहित्य का रूप लेते हैं लेकिन अनुभव सत्य निरूपण करते हैं या नहीं, वर्तमान युग–बोध की सहज अभिव्यक्ति होती है या नहीं, ये कुछ बातें रचनाकार की प्रासंगिकता की कसौटी है।

कबीर के सन्दर्भ में यह कहना कि वे अपने युग के प्रति प्रासंगिक रहे, न्यूनोक्ति होगी। कबीर के साहित्य में तात्कालिक वातावरण, राष्ट्र और संस्कृति परिलक्षित होती है। इसमें तो सन्देह है ही नहीं कि कबीर कल भी प्रासंगिक थे, आज भी हैं और कल भी रहेंगे। उन्हें किसी एक युग के साथ नहीं बाँधा जा सकता है। उनका साहित्य न केवल दर्पण है बल्कि एक ऐसा दर्पण है जो आदेशित भी करता है और तस्वीर

दिखाने के साथ–साथ तस्वीर क्या होनी चाहिए यह भी बता देता है। कबीर की अनुभूति में एक स्वाभाविकता है और उनकी अभिव्यक्ति नैसर्गिक होते हुए कालजयी है।

1.2 तात्कालीन परिस्थितियों में कबीर की प्रासंगिकता

कबीर का अपने समय और देशकाल के प्रति क्या दृष्टिकोण रहा और देशकाल व समाज के प्रति उनका साहित्य कितना प्रासंगिक है? यह सब जानने के लिए आवश्यक हो जाता है कि तात्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश कैसा था? कबीर का समयकाल 1398 ई. से 1518 ई. निश्चित किया गया है। मुख्य रूप से पन्द्रहवीं शताब्दी उनका युग रहा है, जिसकी परिस्थितियों ने कवि की अभिव्यक्ति को प्रभावित किया है। राजनैतिक दृष्टि से देखें तो यह युग भारतीयों के लिए पतन का युग रहा है। उत्तर भारत में मुसलमान शासकों ने राज किया है। सत्ता के केन्द्र दिल्ली पर सैय्यद और लोदी वंश का शासन रहा। लोदी वंश के शासक विशेष रूप से धार्मिक रूप से कट्टर रहे और हिन्दु धर्म पर चोट की।

तात्कालीन समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। समाज में छुआछूत, अंधविश्वास, पाखण्ड, मिथ्याचार और रूढ़िवादिता जैसी अनेक समस्याएँ थीं। कबीर की तात्कालीन प्रासंगिकता का अर्थ है कि वह इन समस्याओं से समाज को उबारना चाहते थे। उन्होंने अंधविश्वास के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द करते हुए कहा है–

''साधो, देखो जग बौराना।
साँची कहों तो मारन धावै झूठे जग पतियाना
हिन्दु कहत हैं राम हमारा मुसलमाना रहमाना
पीपर पाथर पूजन लागे तीरथ बर्त भुलाना
साखि सब्दै गावत भूले आतम खबर न जाना
घर–घर मंत्र जो देन फिरत है माया के अभिमाना।''[2]

× × × × × × × × × × × × × × ×

''माला फेरत जग मुवा फिरा न मन का फेर।
कर का मन का डार के, मन का मनका फेर।।''[3]

तात्कालीन समाज हिन्दु और मुसलमान दो धर्मों में विभाजित था। दोनों ही धर्मों के लोग एक–दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न किया करते थे। दोनों में उच्चता का भाव था जिसके चलते परस्पर द्वेष बढ़ता जा रहा था। कबीर धर्म को छोड़कर भाईचारे पर समाज को खड़ा करना चाहते थे। उन्होंने दोनों ही धर्मों के धर्माधिकारियों को लताड़ा और व्यंग्यात्मक शैली में परिवर्तन लाने का आह्वान किया।

''अरे इन दोउन राह न पाई।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घर में ही करै सगाई।।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुअन न देहीं
वेश्या के पायन तर सौवैं यह देखे हिंदुआई।।''[4]

कबीर ने समाज से विषमता को समाप्त कर समता की स्थापना करनी चाही। वे जिस युग में हुए वह युग ऐसा युग था जब रोजगार के साधन क्षीण थे। राजा, प्रजा से कर लेने को तो आमादा था लेकिन प्रजाहित की उसे परवाह नहीं थी। प्रजा पर जबरदस्ती लगान लादा जा रहा था। लगान अदा न होने के कारण सत्ता पक्ष प्रजा पर जुल्म करता था। कबीर ने तात्कालीन समाज को स्वरोजगार की राह दिखाई। वह स्वंय जुलाहा थे और स्वरोजगार से अपनी गृहस्थी चलाते थे। एक और राह जो उन्होंने तात्कालीन समाज को दिखाई वह थी सन्तोष की राह। सन्तोष के माध्यम से और अपरिग्रह के माध्यम से मनुष्य अपने को दुखों से दूर रख सकता है। वे कहते हैं–

''साईं इतना दिजिए जामै पेट समाए।

मैं भी भूखो न रहूँ साधु न भूखो जाए।।''[5]

जाति प्रथा का दंश हमेशा हिन्दु समाज में रहा है। कबीर के समय में यह अपने विकराल रूप में था। उन्होंने समाज के इस भयानक रूप को देखा जिससे मानवता त्रस्त थी और बड़ी बेबाकी से इसका विरोध किया। उन्होंने ऊँच–नीच की भावना पर प्रहार करते हुए कहा–

''पछा पछी के कारनै, सब जग रहा भुलान।
निरपछ होय कै हरि भजैं, सोई संत सुजान।
ऊँचै कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा साधु निन्दत सोय।।''[6]

कबीर ने संन्यास के प्रति पूर्वाग्रह को तोड़ा। उनसे पूर्व यह मान्यता थी कि गृहस्थ रहते हुए संन्यासी नहीं हुआ जा सकता। ऐसे उदाहरणसमाज के सामने थे। महात्मा बुद्ध ने संन्यास के लिए घर और परिवार छोड़ा, शंकराचार्य ने विवाह नहीं किया। लेकिन कबीर ने दिखाया कि घर–परिवार के साथ भी संन्यासी हुआ जा सकता है। संन्यास का सम्बन्ध त्याग से नहीं बल्कि कर्म से है। कबीर ने समाज को गृहस्थ संन्यास का मार्ग दिखाया।

1.3 वर्तमान परिस्थितियों में कबीर की प्रासंगिकता

प्रत्येक कवि की रचना उसके देशकाल और परिस्थितियों की देन होती है। रचनाकार के साहित्य में काल–सापेक्षता एक अपेक्षित गुण है। रचनाकार अपने काल से सापेक्षता रखते हुए जब काल की सीमाओं को लाँघ जाता है तो उसकी रचना कालजयी हो जाती है। किसी भी साहित्यकार के साहित्य पर प्रासंगिकता का प्रश्न ही उसके साहित्य की सच्ची परख करवाता है। काल–सन्दर्भ में हम आधुनिक युग में रह रहे हैं। किसी भी मध्यकालीन साहित्यकार को वर्तमान काल–सन्दर्भ में परखना यूँ तो उसके साथ अन्याय है, लेकिन यदि उसका साहित्य आज भी प्रासंगिक है तो निश्चित रूप से वह आज भी आधुनिक है। वह अपने युग में आधुनिक था इसमें तो सन्देह ही नहीं रह जाता है। ''आधुनिकता संस्कृति की ग्रहणशीलता व विकासोन्मुखता की परिचायक दृष्टि है, इसलिए वह समूची जीवन–व्यवस्था को प्रभावित करती है... कुल मिलाकर आधुनिकता एक भविष्योन्मुखी दृष्टि है, वर्तमान के सन्दर्भ में।''[7]

कबीर आज भी आधुनिक हैं, प्रासंगिक हैं। यह अपने आप में अचरज का विषय हो जाता है कि 6 शताब्दियों पूर्व का साहित्यकार आज भी समाज को दिशा दे सकता है। आज भी जिसके साहित्य और शिक्षाओं का अनुसरण कर समाज लाभान्वित हो सकता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य की बात करें तो सामाजिक परिस्थितियों में अंतर आया है लेकिन कुछ समस्याएँ आज भी वही हैं जो 600 वर्ष पूर्व थीं। हिन्दू समाज में अंधविश्वास आज भी है। मूर्ति–पूजा आज घटने के स्थान पर बढ़ी है। हिन्दु–मुसलमान और जातिगत झगड़े आज भी हैं। तो फिर कबीर अप्रासंगिक कैसे हो सकते हैं।

वर्तमान में मूल्यों का विघटन हुआ है। गुरु–शिष्य सम्बन्ध तार–तार हुए हैं। पिता अपनी बेटी को बेच रहा है। भाई, भाई का दुश्मन है। कबीर की भक्ति उनकी गुरु के प्रति आस्था आज भी भटकती हुई शिष्य पीढ़ी के लिएएक जोत का कार्य कर सकती है।

''सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार।।''[8]

कबीर ने तो गुरु को परमात्मा के बराबर दर्जा दिया है। यदि यह भावना वर्तमान युवा पीढ़ी में विकसित हो जाए तो विद्यार्थियों की तरफ से अपने गुरुजनों के प्रति जो दुर्व्यवहार हो रहा है वह रुक समता है। गुरुजन भयमुक्त होकर व्यवहार करसकते हैं। आज न डाँटने–फटकारने के परिणाम सामने हैं। कबीर की सीख यदि वर्तमान शिक्षार्थी पीढ़ी को लग जाए तो वर्तमान समाज भयमुक्त और अपराध मुक्त हो सकता है। कबीर कहते हैं–

''गुरु गोविन्द तौ एक हैं, दूजा यह आकार।
आपा मेट जीवत मरै तो पावै करतार।।''[9]

वर्तमान समाज में पाखण्ड बढ़ा है। धार्मिक चैनलों की भरमार है, तो दिन में कई घण्टे राशिफल बताए जाते हैं, रत्नों की महिमा, शनि पूजा की महिमा पर घण्टों टेलिविजन पर चर्चाएँ चल रही हैं। हमारे कुलीन समाज की महिलाएँ पूजा–पाठ और धार्मिक यात्राओं की ओर आकृष्ट हैं। तीर्थ–यात्राएँ आज के समाज का चलन हो गया है। बाबाओं और मठों की संख्या बढ़ी है। सम्प्रदाय पहले से अधिक हैं। यहाँ तक कि कबीर के नाम पर धंधा हो रहा है। कबीर की ही पूजा हो रही है तो फिर कबीर की मूर्ति पूजा विरोध और धर्म–निरपेक्ष वाणी कैसे अप्रासंगिक हो सकती है। कबीर सभी धर्मों को छोड़कर एक परमात्मा की बात करते हैं। वे स्वयं में परमात्मा को खोजते हैं। उनकी सीख वर्तमान में भटकती जनता को सही राह दिखा सकती है–

''हँम तौ एक–एक करि जाँनाँ।
दोइ कहै तिनही कौं दो जग, जिन नाँहिन पहिचाँनाँ।
एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भाँडे, एक ही सिरजनहारा।।''[10]

आज का दौर उपभोक्तावाद का दौर है। हर कोई बाज़ार में रखी वस्तुओं को ललचाई नज़रों से देख रहा है। देखा–देखी बेवजह वस्तुएँ खरीदी जा रही हैं जिससे निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के बीच की खाई निरन्तर बढ़ती जा रही है। आज हर व्यक्ति लालची हो गया है। सन्तोष किसी को नहीं है तो शान्त भी कोई नहीं है। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए दूसरों के गले काटे जा रहे हैं। अधिक पाने की चाह ने मनुष्य को मनुष्यता से गिरा दिया है। भ्रष्टाचार जितना आज हमारे समाज में है शायद उतना कबीर के समय में भी नहीं था। कबीर थोड़े में गुजारा करने की वकालत करते हैं जो शान्ति और सन्तोष का मार्ग है। कबीर संसार और भौतिक वस्तुओं की निस्सारता पर कहते हैं–

''यहु ऐसा संसार है जैसा सैबल फूल।
दिन दस के व्योहार को, झूठै रंगि न भूल।।
कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुरपटन ए गली, बहुरि न देखै आइ।।''[11]

1.4 भविष्य में कबीर की प्रासंगिकता

''आज के युग में मानव ने नये आविष्कारों द्वारा अपनी सत्ता को प्रसारित और जीवन क्षेत्र को विकसित किया है; जिससे सम्पत्ति और सुख का आकर्षण आज तीव्रतर हो गया है। जीवन को सरल बनाने की होड़ में आधुनिक पीढ़ी ने शाश्वत मूल्यों को बदलाव की स्थिति में परिणत कर दिया है।''[12] निस्सन्देह हर पीढ़ी अपने लिए मूल्यों का सर्जन स्वयं करती है। उसे अपने से पूर्व पीढ़ी द्वारा निर्मित मूल्य स्वीकार नहीं होते हैं। जिस प्रकार से पिछले कई दशकों से हमारी संस्कृति में परिवर्तन आ रहे हैं भविष्य में भी ये जारी रहेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि एकान्तवाद और बढ़ेगा। व्यक्ति अपने तक सिमटेगा। उसे अपने व्यक्तित्व से आगे कुछ दिखाई न देगा। भौतिकता हम पर और हावी होगी। मानसिक अवसाद और द्वंद्व बढ़ेगा। मनुष्य आक्रान्त और भय की स्थिति में होगा। तब उस मरती–कटती मानवता को ऐसी लोरी की आवश्यकता होगी जो उसे चैन की नींद सुला सके। मुझे लगता है कबीर की वाणी वह लोरी है जो मनुष्य को फिर से परमात्मा की गोद में सुला सकती है। कबीर की प्रासंगिकता आने वाले कल में भी रहेगी। उनकी अमृतवाणी का पान करके ही मनुष्य अपने अस्तित्व को पहचान पाएगा और फिर से सच्ची भक्ति की ओर लौटेगा।

1.5 उपसंहार

कली के फूल बनने की प्रक्रिया मात्र इतनी है कि वह खुल जाती है। तब उसके अन्तस में निहित रस, रंग और गंध स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। कबीर वास्तव में ऐसे ही फूल रहे हैं जिनकी गंध कल भी अपने परिवेश को सुगंध से भर रही थी, आज भी भर रही है और कल भी महकाती रहेगी। कबीर काल–निरपेक्ष और कालजयी साहित्यकार है। उनके साहित्य को किसी काल, क्षेत्र या सम्प्रदाय के साथ बाँधकर नहीं देखा जा सकता है। उनकी वाणी वो वाणी है जो कल भी दिक्भ्रमित समाज को दिशा दे रही थी आज भी दे रही है और भटके हुओं को कल

फिर राह पर ले आएगी। कबीर के साहित्य को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य के देखने की जरूरत है। कबीर नयी आधुनिक चेतना, पाखण्डहीन समाज, सन्तोषी, मानवता और सम्प्रदाय, जाति–विहीन समाज के पक्षधर हैं। वे विकासोन्मुखी भारत के नायक हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. डॉ. मदन मोहन भारद्वाज, आधुनिक हिन्दी मराठी नाटकों में युगबोध, पृष्ठ–8।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ–299, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, कार्यालय।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ–299, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, कार्यालय।
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ–328, 329, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, कार्यालय।
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ–288, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, कार्यालय।
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ–303, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, कार्यालय।
7. डॉ. बैजनाथ सिंहल, नयी कविता मूल्य मीमांसा, पृष्ठ 11, मंथन पब्लिकेशन, रोहतक।
8. डॉ. श्याम सुन्दर दास, पृष्ठ 49, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. डॉ. श्याम सुन्दर दास, पृष्ठ 49, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. डॉ. श्याम सुन्दर दास, पृष्ठ 130, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. डॉ. श्याम सुन्दर दास, पृष्ठ 64, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. अशोक कुमार गुप्त, आधुनिक युग के वातायन से, पृष्ठ 11 पुस्तक प्रचार प्रकाशन, दिल्ली।